Artistic Narration Vol. XIV No. 1 Jan.-June 2023 ISSN (P): 0976-7444 (e): 2395-7247
Impact Factor 8.898 (SJIF)

शान्ति दवे का आधुनिक चित्रकला में योगदान

डॉ० दिशा दिनेश
असिस्टेंट प्रोफेसर
आई०एन०पी०जी० कॉलेज, मेरठ
ईमेलः drdishadinesh@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० दिशा दिनेश

शान्ति दवे का आधुनिक चित्रकला में योगदान

Artistic Narration 2023, Vol. XIV, No. 1, Article No. 9 pp. 63-70

Online available at:
https://anubooks.com/journal/artistic-narration

सारांश

सन् 1950 के समय भारतीय कला में उत्तेजना और पुनः सामंजस्य का काल माना जा सकता है, जिनके पीछे हमारी संस्कृति प्रेरणा का मूल स्रोत है। यहाँ कला क्षेत्र में परिवर्तन पश्चिमी जैसा नहीं है। विदेशों में अकादमी की कला परम्परा के विपरीत प्रभाव के रूप में विभिन्न शैलियाँ पनपी। यहाँ पर भी विदेशी यथार्थवादी शैली की लोकप्रियता एवं उसकी प्रतिक्रिया देखी गयी। अवनीन्द्र नाथ के नेतृत्व में बंगाल स्कूल में निश्चित रूप से इतनी ताकत न थी कि कलाकार की सृजनात्मकता स्वच्छन्द रूप से प्रकट हो सके। बंगाल की कला को द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकरता, ब्रिटिश राजाओं के अत्याचार, स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, जातीय दंगे, भारत का विभाजन, शरणार्थी की समस्या आदि ने कलाकारों के हृदय की भावनाओं को प्रकट होने को मजबूर किया। हुसैन जैसे कुछ कलाकारों ने भारतीय धर्म, पुराण, लोककला को आधार बनाकर चित्र रचना की। कलाकारों के चारों ओर का वास्तव जगत के भिन्न रूप, उनके मानव पटल पर प्रतिबिम्बित हुए। 1950 के बाद इस दिशा में प्रयास बेन्द्रे के चित्रों ने, तत्पश्चात् 1960 के मध्य से भारतीय कलाकारों ने विभिन्न प्रयोगों को महत्व दिया। इन कलाकारों ने भारतीय कला को राष्ट्रीय परिधि से बाहर निकालकर पाश्चात्य कला की तकनीक एवम् अभिव्यक्ति के समानान्तर भारतीय कला को आधुनिकता से जोड़ दिया। कला के बदलावों के साथ इन कलाकारों ने विदेशी तकनीक में भी कार्य किये, तथा विदेशी पद्धति (तैल माध्यम) में भी नये नये प्रयोगों को कर एक शक्तिशाली समन्वयात्मक रचना पद्धति की खोज की। इसी समय

शान्ति दवे का आधुनिक चित्रकला में योगदान

डॉ० दिशा दिनेश

'बड़ौदा कला महाविद्यालय' की स्थापना ने भारतीय आधुनिक कला को पूर्णतया विदेशी कला के शिंकजे से मुक्त करा दिया और उसे विदेशों में आधुनिक भारतीय कला के रूप में गौरव दिलाया।[1] इन कलाकारों ने अपनी स्वयं की तकनीक तथा प्रणालियों से आधुनिक भारतीय कला जगत को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आज भारतीय कला का परम्परागत तथा आधुनिकता दोनों में ही विकास हुआ है। इस समय भारत में बहुत से कलाकार ऐसे है जिन्होंने इन दोनों शैलियों में कार्य किया है। भारतीय परम्परा में पूर्ण रूप से जुड़े रहने पर भी ये कलाकार आधुनिक समाज में दौड़ रहे है। 1947 के लगभग दिल्ली में पहली बार एक अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का आयोजन हुआ जिसमें भारतीय कलाकारों को पहली बार स्वतन्त्र रूप से की गई चित्रकारी के प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय कलाकारों की कृतियों को देखने व परखने का अवसर मिला। शान्ति दवे एक ऐसे चित्रकार हैं जिन्होंने स्वयं को कला के व्यवसायीकरण की अंधी दौड़ से दूर रख 'कला साधना' में अपना सम्पूर्ण जीवन को समर्पित कर दिया। वे अपनी कला के विशिष्ट तकनीको से भारतीय कला–परम्परा को एक नया आयाम दिया। वे अपनी कला के विशिष्ट तकनीको से भारतीय कला परम्परा को एक नया आयाम दिया।

भारतीय कलाकारों का देन 50 वर्षो में कला क्षेत्र में नितान्त मौलिक है, जिनके पीछे हमारी संस्कृति प्रेरणा का मूल स्रोत है। यहाँ कला क्षेत्र में परिवर्तन पश्चिमी जैसा नहीं है। विदेशों में आकदमी की कला परम्परा के विपरीत प्रभाव के रूप में विभिन्न शैलियाँ पनपी। यहाँ पर भी विदेशी यथार्थवादी शैली की लोकप्रियता एवं उसकी प्रतिक्रिया देखी गयी। अवनीन्द्र नाथ के नेतृत्व में बंगाल स्कूल में निश्चित रूप से इतनी ताकत न थी कि कलाकार की सृजनात्मकता स्वच्छन्द रूप से प्रकट हो सके। रवीन्द्रनाथ, गगेन्द्रनाथ, अमृता शेरगिल, यामिनीराय के नये प्रयोगों के साथ अर्न्तराष्ट्रीय कला शैली, अभिव्यंजनावाद, स्वनिलवाद, घनवाद और भारतीय लोककला से प्रेरणा लेकर चित्र बनाने की इच्छा कलाकारों में प्रबल हो उठी। अन्य देशों की तरह जंगलीवाद एवं दादावाद भी यही पनपा परन्तु अमूर्तवाद की ओर कलाकारों का विशेष रूझान रहा। रवीन्द्रनाथ ने युवा कलाकारों को उस रास्ते पर चलने को नेतृत्व किया जो विभिन्न प्रयोगों पर निर्भर थी, जिसमें कलाकारों को अपनी कला पर भारतीय का 'लेबल' लगाने पर जोर नहीं था। टैगोर के अभिव्यंनावादी चित्र और उसके बाद के कलाकारों के लिए विशेष प्रेरणादायी सिद्ध हुए। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक घटनाओं ने कलाकारों को अधिक सक्रिय बनाया। बंगाल की कला को द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकरता, ब्रिटिश राजाओं के अत्याचार, स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, जातीय दंगे, भारत का विभाजन, शरणार्थी की समस्या आदि ने कलाकारों के हृदय की भावनाओं को प्रकट होने को मजबूर किया। हुसैन जैसे कुछ कलाकारों ने भारतीय धर्म, पुराण, लोककला को आधार बनाकर चित्र रचना की। कलाकारों के चारों ओर का वास्तव जगत के भिन्न रूप, उनके मानव पटल पर प्रतिबिम्वित हुए। 1950 के बाद इस दिशा में प्रयास बेन्द्रे के चित्रों ने, तत्पश्चात् 1960 के मध्य से भारतीय कलाकारों ने विभिन्न प्रयोगों को महत्व दिया। भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता से पहले ही कलाकारों में नवीन सृजन की छटपटाहट शुरू हो चुकी थी। कलाकार सक्रिय हो चुके थे। समयानुकूल देशीय विषयों में आस्था रखते हुए

कलाकार मातिस, पिकासो आदि की कला से प्रेरणा लेकर नये ढंग से विषयों को उभारने लगे थे और सौन्दर्य के पुराने मापदण्ड से अलग मापदण्डों की स्थापना करने में कलाकार जुट गये थे जिसमें अमूर्त कला की ओर कलाकारों का झुकाव बढ़ने लगा। नयी दृष्टि, नये बोध और नयी शैली में कलाकार अलौकिक के स्थान पर लौकिक, अतिरंजित के स्थान पर सहजता, दिव्यता के स्थान पर मानवीयता तथा परम्पराओं की रूढ़ियों से मुक्त होरक प्रगति पथ पर अग्रसरित होने लगे थे। शैली विशेष में बंधे इन कलाकारों ने सन् 1943 में 'कलकत्ता ग्रुप' तथा 1947 ई० में दिल्ली में 'शिल्पीचक्र की स्थापना की। 1948 ई० में बम्बई के प्रगतिशील कलाकारों के ग्रुप में भारतीय कला जगत को पश्चिम की ओर मोड़ दिया। इन कलाकारों में हुसैन, सूजा, आरा, रजा, गाडे तथा बाकडे आदि कलाकार थे। सूजा, रजा, बाकडे तथा हुसैन के बाहर चले जाने के बाद एक नये ग्रुप की स्थापना हुई, जिसमें पल्सीकर, हैब्बार, बेन्द्रे, लक्ष्मण पै, मोहन सामन्त, अकबर पद्म–सी, तैयब मेहता तथा बी०एस०गायतोण्डे आदि कलाकार रहे।[1] इन कलाकारों ने भारतीय कला को राष्ट्रीय परिधि से बाहर निकालकर पाश्चात्य कला की तकनीक एवम् अभिव्यक्ति के समानान्तर भारतीय कला को आधुनिकता से जोड़ दिया। कला के बदलावों के साथ इन कलाकारों ने विदेशी तकनीक में भी कार्य किये, तथा विदेशी पद्धति (तैल माध्यम) में भी नये नये प्रयोगों को कर एक शक्तिशाली समन्वयात्मक रचना पद्धति की खोज की। इसी समय 'बड़ौदा कला महाविद्यालय' की स्थापना ने भारतीय आधुनिक कला को पूर्णतया विदेशी कला के शिंकजे से मुक्त करा दिया और उसे विदेशों में आधुनिक भारतीय कला के रूप में गौरव दिलाया।[2] इन कलाकारों में गुलाम मुहम्मद शेख, के०जी० सुब्रहाण्यम्, भूपेन खक्कर, जे०राम पटेल आदि जो कि भारतीय समकालीन कला में शीर्षस्थ स्थान में गिने जाते हैं। इसके अतिरिक्त शान्ति दवे, प्रदोष दास गुप्ता, परितोष सेन, के०एस०कुलकर्णी, रामकुमार, अर्पिता सिंह, अंजलि–ईला–मेनन, सतीश गुजराल, अकबर पदमसी, रणबीर सिंह बिष्ट, विकास भट्टाचार्य, एन०एस०बेन्द्रे, के०के०हेब्बार, वी०एस०गायतोण्डे, कृष्ण खन्ना, पी०टी०रेड्डी आदि कलाकारों ने अपनी स्वयं की तकनीक तथा प्रणालियों से आधुनिक भारतीय कला जगत को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आज भारतीय कला का परम्परागत तथा आधुनिकता दोनों में ही विकास हुआ है। इस समय भारत में बहुत से कलाकार ऐसे है जिन्होंने इन दोनों शैलियों में कार्य किया है। भारतीय परम्परा में पूर्ण रूप से जुड़े रहने पर भी ये कलाकार आधुनिक समाज में दौड़ रहे है। 1947 के लगभग दिल्ली में पहली बार एक अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का आयोजन हुआ जिसमें भारतीय कलाकारों को पहली बार स्वतन्त्र रूप से की गई चित्रकारी के प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय कलाकारों की कृतियों को देखने व परखने का अवसर मिला। भारत के अनेक कलाकार दिल्ली में आकर ही रहने लगे। सतीश गुजराल, वीरेन डे, लक्ष्मण पै, रामकुमार, स्वामीनाथन, कृष्ण खन्ना शान्ति दवे, जी०आर० सन्तोष, विमल दास गुप्ता आदि प्रमुख कलाकारों में थे, जो विभिन्न मान मूल्यों को निजी माध्यमों की कसौटी पर परखने लगे।

डॉ० दिशा दिनेश

शान्ति दवे एक ऐसे चित्रकार हैं जिन्होंने स्वयं को कला के व्यवसायीकरण की अंधी दौड़ से दूर रख 'कला साधना' में अपना सम्पूर्ण जीवन को समर्पित कर दिया। वे अपनी कला के विशिष्ट तकनीको से भारतीय कला–परम्परा को एक नया आयाम दिया। वे अपनी कला के विशिष्ट तकनीको से भारतीय कला परम्परा को एक नया आयाम दिया। शान्ति दवे ने अपनी पहचान अपनी शैली अर्द्ध अमूर्तन चित्रकारी द्वारा की जिस पर पर कैन्डिस्की और पाल क्ली का विशेष प्रभाव प्रडा। उन्होंने अमूर्त रूपाकारों के साथ लिपिमूलक संकेत चिन्हों को इस प्रकार आपस में मिलाया है कि चित्रों में अनायास कुछ पत्थर, टूटी–कूटही मूर्तियों के अंश, रंग जैसे एक चबूतरे पर बिछा दिये गये हों जहाँ से अनायास ही गाँव के पेड़, पशु पक्षी व मानव आकृतियाँ गायब हो गई। वस्तुतः ये रूप उनके अनुभवों के ही प्रतिबिम्ब थे जिसको उन्होंने अपने जीवन के अथक प्रयासों से प्राप्त किया है।

अतः यह नितान्त सत्य है कि दवे ने अमूर्तन को फैशन की तरह नही अपनाया बल्कि अभीष्ट की प्राप्ति के लिए निरन्तर अमूर्तन की ओर बढ़ते रहे। गन्तव्य मार्ग पर भले ही विध्न बाधाऐ आयीं, परन्तु कलाकार निरन्तर अपनी साधना में लीन रहे।

दवे ने चित्रों में से कहानी को अलग कर दिया और चित्र के डिजाईन को ही प्रमुख महत्व दिया। अतः चित्र के धरातल को अत्यन्त कुशलतापूर्वक विभाजित कर चित्रों को नये पैटर्न की जगह दी। उनके द्वारा आकृतियों के अनुपात तथा रंगों का संयोजन अब बिल्कुल अलग तरह से किये जाने लगे। शान्ति दवे की शैली कभी घनवादी तो कभी आलंकारिक लगी परन्तु उनकी कला कभी भी एक निश्चित शैली में बँधकर नहीं रही। उनकी रचना–प्रक्रिया एवं तकनीक श्रम–साध्य है तथा इस निजी तकनीक और रंग व्यवहार के कारण ही शान्ति दवे ने अपनी अलग पहचान बना ली है। अमूर्त भाषा से जुड़े उनके चित्र नये प्रयोगों के कारण दर्शक को प्रभावित करते है। जो दूर से देखने पर ऐतिहासिक अवशेष से लगते है। वह अपने चित्रों में उभरे हुए रूपों का प्रयोग करते है तथा रंग–परतों–तहों में उड़ेल देते है। उनके चित्रों रंगों की भूमिका दृष्टव्य है। वे रंगों को मनुष्य की तरह मानते है क्योंकि रंग मनोभावों का दर्पण है। वे कहते है "आप यह देखिए कि रंग भी मनुष्य की तरह होते है, जब वे दो, तीन, चार, पाँच एक जगह इकट्ठा होते है तो एक संवाद की स्थिति पैदा हो जाती है।" शान्ति के कुछ रंग प्रिय है जो पूरे कैनवास पर अपना अस्तित्व जताते है जबकि उनके साथ कई रंग गहराते–उतराते दीख पड़ते है। यह कारण है कि उनके रंगों की आभा दर्शक का पीछा नही छोडती, वह स्मृति से संजो रखता है।

दवे के रंगो का वैशिष्ट्य है उनका रंग चरित्र। वे एक्रेलिक रंगों के साथ मिश्रित माध्यम में चित्र बनाते है उनके रंगों में ताजापन है। धातुई चमक दमकती रहती है मगर चकाचौंध नहीं करती और न हटने देती है, रोक लेती है और देखते रहने को विवश करती है। शान्ति दवे की कला में गहरा सन्तुलन है। उनके चित्र–धरातल को अपने रंगों और रूपाकारों

से मापते हुए लगते है। चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि चित्र में बनी सभी चीजों को सधे हुये हाथों से बनाया गया है। शान्ति दवे एक ऐसे कलाकार है, जो परम्परा को अपना ध्येय मानते है।

1954 में ललित कला अकादमी की स्थापना हुई जिसने अन्तर्राष्ट्रीय कला शैलियों तथा भारतीय कला प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया। आधुनिक भारतीय कलाकार अब तक आकृतिमूलक अभिव्यक्ति में ही विश्वास रख रहे थे। कला समाज का दर्पण है जिसमें कलाकार अपने आसपास के दैनिक जीवन को चित्रित करता है। तत्कालीन सभी आधुनिक चित्रकार आकृतिमूलक चित्र बना रहे थे। विशेष उल्लेखनीय बात यह रही कि 1957 में शान्ति दवे का बना चित्र गोट्स, 1958 में बना चित्र लाईफ तथा 1959 में चित्र द रिवर बैंक को लगातार तीन वर्षो तक पुरस्कार प्राप्त हुए।

इन कलाकृतियों में सशक्त रूप, रंग, रेखा और तूलिकाघात वैशिष्ट्य देखने को मिलती है। चित्रों की अभिव्यक्ति में भारतीय मन एवं आत्मा को विद्यमान रहने के साथ लोककला भी बीज रूप में यत्रतत्र दिखाई पड़ते है। शान्ति दवे ने अपने प्रारंभिक चित्रों में रेखाओं को महत्व प्रदान कर छाया प्रकाश को कोई स्थान नहीं दिया। कलाकारों ने रेखाओं को महत्व देकर पश्चिमी छाया प्रकाश के सिद्धांत का तिरस्कार किया। विज्ञान और तकनीकी युग में व्यस्त जीवन की रफ्तार कलाकार के नाना प्रकार के प्रयोगों मं प्रतिबिम्वित हुए है। आकृतिमूलक चित्रों का युग अब समाप्त हो गया है। अमूर्त रूप के अंकन में कलाकार परिस्थिति, समय, वातावरण (राजनैतिक,सामाजिक संघर्ष) आधुनिक युग की भीड़भाड़ अभाव, समाज और अन्तर्मन की हलचल को चित्र के रूप में नया स्वरूप देते है। वह प्राचीन सौन्दर्य सिद्धान्तों के नियमों से पूर्णतः स्वतन्त्र है। आदर्श रूप आदि की कोई परवाह न करते हुए कलाकार रंग और ब्रश के प्रयोग के स्थान पर कैनवास पर नये–नये माध्यमों को मिश्रित माध्यम के रूप में प्रयोग कर रहे है। विभिन्न सामग्री रस्सी, कपड़ा, प्लास्टिक, तार, एल्यूमीनियम, शीशा, काँच, मशीन के टूटे पुर्जो को कोलाज के रूप में चिपकाने में उन्हें अधिक आनन्द आता है। ऐसी कला की प्रस्तुति के लिए भले ही उसे किसी प्रकार की विशेष ट्रेनिंग की तो आवश्यकता नहीं होती पर वह अपने सौन्दर्यबोध से काम करता है। चित्र में स्थान निरूपण, रंगों के तान को महत्व देता हुआ अपनी कल्पना को कलाकार साकार करता है। नये–नये प्रयोगों से आकस्मिक सफलता से उसे बहुत प्रसन्नता होती है। अमूर्तवाद द्वारा भाव की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को आज विश्व के सभी देशों में स्थान प्राप्त है।

शान्ति दवे ने अपने रूपाकारों को सरल, सहज रूप देने के लिए रसिक डी० रावल तथा हुसैन से प्रेरणा प्राप्त की। चूँकि शान्ति दवे बड़ौदा कॉलेज ऑफ आर्ट से शिक्षा प्राप्त करने के कारण कला की व्याकरण से पूर्णतः अभिज्ञ थे, अतः नये ढंग से अभिव्यक्ति की चाह को स्वरूप ग्रहण करने में अधिक समय नहीं लगा, भले ही नई तकनीक की खोज में उन्हें पर्याप्त संघर्ष

करना पड़ा हो। आकृतिमूलक चित्रों में रसिक रावल की तरह लम्बी गर्दन सम्पूर्ण आकृति के अनुपात में चेहरे के नाम को बहुत छोटा करने में शान्ति दवे ने अपनी शैली को एक विशेष स्वरूप दिया। ऐसे चित्रों में रेखाऐं, सरल होते हुए भी सबल प्रतीत होती है। चित्रों में प्रायः झोपड़ी की बाह्य रेखा से 'स्पेस डिवीजन' करके अग्रभूमि, पृष्ठभूमि एवं आकाश का आभास कराके मानवाकृतियों को उचित स्थान पर रखा गया है। उनके द्वारा बनाये चित्र, समुद्र किनारे, श्रृंगार, 'द ईजी चेयर' और कुछ चित्रों को जिन्हें शीर्षकविहीन रखा गया था उनके रंगों में प्रायः नीले, हरे आदि चटकीले व विपरीत रंगों का प्रयोग कर कलाकार ने चित्रों को विशेष रूप प्रदान किया। उनका चित्र 'हार्सकार्ट' पर योजना चटकीले रंग जहाँ हुसैन की लोककला से प्रभावित है वहीं पृष्ठभूमि का 'टैक्सचर' आने वाले समय में एक कलाकार का पोत के प्रति रूझान को इंगित करता है। मानवाकृति, घोड़ा एवं गाड़ी अत्यन्त सरल रूप में बाल कला एवं प्रागैतिहासिक कलाकारों की विशेषता लिये हुए है। लोककला में प्रभावित चित्र का एक और सुन्दर उदाहरण है चित्र 'मयूर' । सरल ज्यामितिक रेखाओं में बँधा हुआ मयूर का आकार पोतयुक्त पृष्ठभूमि पर गहरे रंग में पर्याप्त उभरा हुआ है।

मयूर

आगे आने वाले समय में जैसे–जैसे कलाकार का रूझान टैक्सचर में होने लगता है वैसे–वैसे रूप केवल आकार में कैनवास पर दिखायी देने लगते है। ये रूप चौकोर, आयत एवं वृत्त का मात्र संयोजन उनके द्वारा बनायी चित्र श्रृष्खला 'अनटाइटिल्ड' चित्र सं० 37 के रूप में विपरीत रंग योजना में उभर आया है जैसे यदा–कदा बच्चे अपने खिलौने सजाने के लिए छोटे–बड़े खिलौने को प्रमुखता के हिसाब से क्रमबद्ध करते हैं वैसे ही शान्ति ने छोटे–बड़े आकारों को एक धरातल पर संयोजित किया। सम्भवतः इसी शुरूआत में आगामी वर्षो में कलाकार के लिए ये समझना आसान हो गया कि बड़ी छोटी आकृतियों को किस क्रम में रखा जाए या कहाँ प्रमुख आकृति को स्थान दिया जायें। प्लाई के टुकड़ों को काट–काट कर संयोजन करने में अब शान्ति दवे को विशेष आनन्द मिलने लगा उनके रंगों में लाल, हरा, काला, पीला, नारंगी रंगों में विपरीतता होते हुए भी उनके ऊपर अंकित लेख से पर्याप्त सामंजस्य गुण आ गया था। अन्यत्र अनेक चित्रों में यही गुण एक ओर जहाँ अमूर्तता की ओर कलाकार का रूझान बताता है वहीं भारतीय परम्परा, रूप, रंगादि प्रतीक के रूप में इन चित्रों में विद्यमान हैं।

शान्ति दवे के चित्रों में मूर्त रूप होने पर भी जहाँ उन्हें अमूर्तता से जोड़ा गया है वहाँ पर उनकी कला में एक रूप और होना चाहिए जो उन्हें तान्त्रिक कला से भी जोड़ता है यह प्रभाव उनके चित्रों में चाहे–अनचाहे रूप में ही देखा जा सकता है। जिस प्रकार तान्त्रिक चित्रकार प्रतीकों, ज्यामितीय आकार तथा लिपियों का प्रयोग अपनी चित्र रचना में करते है उसी प्रकार का प्रभाव दवे की कृतियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके चित्रों में प्रतीकों का भी प्रयोग होता रहा है।

उनके द्वारा बनायी गयी सभी कलाकृतियों में इस प्रकार का प्रभाव अवश्य विद्यमान रहता है। इस प्रकार की कलाकृतियों का निर्माण जी०आर० सन्तोष ने भी विशेष रूप से किया है जो शान्ति दवे को घनिष्ठ मित्रों में से एक रहे है। इस प्रकार का प्रभाव हम के०सी०एम० पणिकर के चित्रों में भी देख सकते है जो एक अमूर्तवादी तान्त्रिक कलाकार है।

शान्ति दवे ने सामान्य विषयों में उच्च कोटि के कलात्मक बिम्बों की रचना की और वे अपनी अभिव्यक्ति को अधिक वास्तविकता प्रदान करने के लिए चित्रों में प्रतीकों एवं रूपको के साथ अपने बुद्धिचातुर्य का प्रयोग भी करते रहे है। उनकी कृतियाँ तकनीकी रूप से परिष्कृत कृतियाँ हैं, जिनमें पहचानी जा सकने वाली वस्तुओं और घटनाओं का संयोजन है और जो विभिन्न चित्रात्मक युक्तियों के सर्वोत्तम उपयोग द्वारा उनके जीवन के अनुभवों की झलक प्रस्तुत करती है। बहुत से आलोचक उनकी कला को भारतीय लघु चित्रों से भी प्रभावित मानते है। इस बात को नकारते हुए शान्ति दवे ने इस प्रभाव को उनके ग्रामीण वातावरण का एक संयोग कहा है।

1955 में जब शान्ति दवे ने चित्रकारी प्रारम्भ की तब उनकी शैली में ग्रामीण वातावरण एवम् लोक–जीवन का प्रभाव प्रमुखता से रहा था यह भी कहा जा सकता है कि वह ऐसे बिम्ब थे जो उनके जीवन के मानस पटल पर प्रतिबिम्बित थे और वह अनछुऐ प्रभाव ही उनके चित्रों में परिलक्षित होते है। शान्ति ने दैनिक कार्यो में व्यस्त महिलाओं का जीवन, झोपाडियाँ तथा घरों के बाहर बने दरवाजों पर धार्मिक चिन्हों को अपने चित्रों में दर्शाया। इसके अतिरिक्त उनके लिपि चित्रों (जो कि राजपूतकालीन कला व कॉगड़ा कला से प्रभावित थे) पारम्परिक लघुचित्रकला व धार्मिक चिन्हों का प्रभाव मिलता है। शान्ति का कहना है कि "शुरू से ही मैं समुद्रो संसार, प्राचीन गुफा चित्रों, पौराणिक और धार्मिक आख्यानों और पुराने–स्मारकों के खण्डहरों से चमत्कृत होता रहा हूँ।"[3] शान्ति दवे के चित्रों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि उनके चित्रों में रूपाकार परम्परागत न होते हुए भी भारतीय धर्म व परम्परा से अलग नही है जिसका एक कारण यह भी है कि कलाकार की कला वह दर्पण हैं जिसमें वह नये जगत, नये रूपों को देखता है। इसी प्रकार शान्ति ने भी परम्परा में झॉका और अपने दृष्टिकोण के अनुसार अपनी शैली में अपनाया। उन्होंने किसी विशेष शैली में चित्र नही बनाये हैं अपितु अपनी स्वयं की शैली विकसित की। जो उनके साधारण ग्रामीण जीवन को परिलक्षित करती है शान्ति का जीवन ग्रामीण परिवेश से सरावोर रहा है।

शान्ति दवे ने अपने आकार चित्रों में मोटी रेखाओं तथा सपाट रंगों का प्रयोग किया है। इस प्रकार शान्ति दवे की कला उन्हें भारतीय लोक कला के समीप भी पहुँचा देती है। इस प्रभाव को उनके ग्रामीण वातावरण का भी प्रभाव कहा जा सकता है।

शान्ति दवे की आकृतियों में भी लोक कला का प्रभाव परिलक्षित होता है जबकि संयोजन आधुनिक है। इस प्रकार उनके चित्रों में लोक एवं आधुनिकता का समन्वय देखने को मिलता है। शान्ति दवे ने अपनी कला को एक नया अर्थ प्रदान किया है, उनकी रंगाकन पद्धति आधुनिक होने पर भी विषय वस्तु पारम्परिक रही है। चित्रों में डिजाइनों के बोध के कारण उनके रंग जीवन्त से प्रतीत होते है। सजावटी पैटर्न, प्रतीक तथा आकृतियाँ पार्श्व में दिखाई दे जाती है। इनकी रचना पारम्परिक रूप से ग्रहण की जा सकती है तथा उनका निर्माण भी परम्परागत रूप से हुआ।

वस्तुतः कलाकार जिस परिवेश में रहता है अपने आसपास के वातावरण समाज और घर की स्थिति से प्रभावित होकर अभिव्यक्ति करता है। शान्ति दवे ने प्रकृति चित्रण के रूप में स्वतन्त्र चित्र रचना नही की परन्तु अमूर्त चित्राभिव्यक्ति के पीछे प्रेरणास्त्रोत के रूप में प्रकृति ने सदा कलाकार को प्रेरित किया है। इस सन्दर्भ में उनका स्वयं का वक्तव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने अपने अमूर्त चित्रों को प्रकृति से सम्बन्धित रखते हुए एक वक्तव्य में तर्क दिया कि "जब मैं एक साँझ के दृश्य में डूब गया था कि मैंने एक चट्टान से पीछे टिका ली। दिन की धूप में झुलसने के कारण वह गर्म हो उठी थी। उनकी गर्मी मुझे महसूस हो रही थी। सामने जो कुछ था उसमें डूबे हुए भी मेरे अपनत्व में एक व्यक्ति सुरक्षित था, जिसका मुझे आभास हो रहा था, और फिर कभी मैं एक चित्र बना रहा था कि समाप्त करते–करते वे सारी अनुभूतियाँ जैसे फिर उस चित्र के साथ सजीव हो आयी और यही अमूर्तता है"।

अमूर्तता के सन्दर्भ में कही गई बात कितनी सार्थक एवं सटीक कि शान्ति दवे ने फैशन के रूप में कला में अमूर्तता को नहीं अपनाया बल्कि अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए उन्होंने कठोर तपस्या की। जिसका परिणाम अमूर्तन में सृजनात्मकता है, जो भारत ही नहीं विश्व के कला मंच पर कलाकारों को प्रेरणा और दर्शकों को सुखद अनुभति प्राप्त कराने के लिए सक्षम है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. अग्रवाल, गिरिराज किशोर. आधुनिक भारतीय चित्रकला. पृष्ठ **146.**
2. कासलीवाल, मीनाक्षी. ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त. पृष्ठ **39.**
3. (1976). दिनमान. 25–31 जनवरी।